राष्ट्रीय पाठ्यक्रम

पालकों की नज़र में

हो सकता है कि एन.सी.ई.आर.टी. ने इस ढांचे को अंतिम रूप देने से पहले शिक्षकों से परामर्श लिया हो लेकिन पालकों को इसमें शामिल किया गया हो, ऐसा नहीं लगता। शैक्षिक प्रक्रिया में पालक और शिक्षक हमेशा मूक और अदृश्य 'प्रभावित' होते हैं। हम जैसे कुछ अभिभावक हतप्रभ हैं कि हमारे बच्चों की शिक्षा जैसे अहम मुद्दे पर निर्णय वकीलों और सुप्रीमकोर्ट के जजों ने ले लिया है।

आर. राजेश

स्कूली शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) एन.सी.ई.आर.टी. के पहले के पाठ्यक्रमों से काफी भिन्न है। इसमें कई सारे व्यापक बदलावों की सिफारिश की गई है और यह काफी हद तक एक नीतिगत दस्तावेज़ लगता है। मीडिया और इस मामले की सुनवाई कर रहे सुप्रीम कोर्ट के एक जज ने इसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2002 कहा है, जो दरअसल यह है नहीं। केन्द्रीय शैक्षिक सलाहकार बोर्ड (केब) जैसी सलाहकार संस्था की सलाह के बगैर इस ढांचे को अंतिम रूप दे दिया गया है। हालांकि एन.सी.ई.आर.टी. दावा करती है कि उसने इस विषय पर गहन सलाह मशविरा किया है मगर वस्तुस्थिति यह है कि कई सारे ऐसे शिक्षा शास्त्रियों और विशेषज्ञों ने इस दावे की सत्यता पर सवाल उठाए हैं कि एन.सी.ई.आर.टी. ने उनसे परामर्श लिया है। हो सकता है कि एन.सी.ई.आर.टी. ने इस ढांचे को अंतिम रूप देने से पहले शिक्षकों से परामर्श लिया हो लेकिन पालकों को इसमें शामिल किया गया हो, ऐसा नहीं लगता। शैक्षिक प्रक्रिया में पालक और शिक्षक हमेशा मूक और अदृश्य 'प्रभावित' होते हैं।

हम जैसे कुछ अभिभावक हतप्रभ हैं कि हमारे बच्चों की शिक्षा जैसे अहम मुद्दे पर निर्णय वकीलों और सुप्रीम कोर्ट के जजों ने ले लिया है। हम साम्प्रदायिक पागलपन की उस आग को देखकर चिन्तित हैं जिसने पूरे गुजरात को झुलसा डाला था। गुजरात बोर्ड की मौजूदा स्कूली पाठ्यपुस्तकों ने हमें भयभीत कर दिया। यहां इतिहास विषय में हिन्दु पुराणों को व्यापक स्थान प्राप्त है। साथ ही उसमें स्पष्ट साम्प्रदायिक रुझान है। हमने पाया कि पाठ्यपुस्तकों की विषयवस्तु और फरवरी के बाद गुजरात में विवेकशून्यता की स्थिति के बीच गहरा सम्बंध है। हम अपने आपसे और बतौर पालक अपनी उदासीनता पर सवाल करते हैं जिसने ऐसी स्थिति को सम्भव बनाया।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा के अध्ययन के बाद पालकों और शिक्षकों के फोरम से जारी एक वक्तव्य में हमने कहा था, "स्कूली शिक्षा में सत्य की खोज, तार्किक सोच और वैज्ञानिक तार्किकता को शामिल किया जाना चाहिए। हमें जीवन और समाज के प्रति एक धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक सोच को प्रोत्साहित करना चाहिए। ताकि विद्यार्थी साम्प्रदायिक, भाषागत और अन्य संकीर्ण पूर्वाग्रहों से ऊपर उठ सकें। शिक्षा को सामाजिक जागरूकता, समाज के प्रति दायित्व की भावना, काम के प्रति सम्मान की भावना और शोषण व अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने की हिम्मत विकसित करनी चाहिए।"

हम मानते हैं कि हमारे द्वारा प्रस्तुत शिक्षा के ये उद्देश्य कुछ मूल्यों को प्रतिबिम्बित करते हैं। हमें ये मूल्य दरकार हैं। हमारा 'प्रगति' के विचार पर पूरा विश्वास है। हमें विश्वास है कि समाज में हर वक्त दो तरह के मूल्य कार्य करते हैं - एक तरह के मूल्य तरक्कीपसन्द होते हैं जो समाज को आगे ले जाते हैं और दूसरी तरह के प्रतिगामी मूल्य समाज को पीछे धकेल देते हैं। एन.सी.एफ. में भी मूल्यों और मूल्य आधारित शिक्षा की

भरमार है, लेकिन इनमें निहित मूल्यों की गहराई से पड़ताल करने पर हमें उसके और हमारे मूल्यों के बीच एक दुर्भाग्यपूर्ण विरोधाभास दिखा।

एन.सी.एफ. मूल्य आधारित शिक्षा के विषय को इस तरह प्रस्तुत करता है, "हमारे देश में स्कूली शिक्षा ने बुनियादी मूल्यों के प्रति एक तरह की उदासीनता विकसित कर ली है और समाज के पास अपने धर्मों के बारे में सही रूप से जानने का समय या रुझान कम ही नज़र आता है।" फिर वह इन काल्पनिक कमियों की क्षतिपूर्ति के लिए सुझाव देता है कि धर्म के बारे में शिक्षा को स्कूल में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों और पाठ्यक्रम संबंधी अन्य गतिविधियों में नपे-तुले ढंग से जोड़ा जाएगा ताकि कक्षा में, खेल के मैदानों में, स्कूल की आम सभाओं में और सांस्कृतिक केन्द्रों में इन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। इससे आगे एन.सी.एफ. कहता है कि यह सब 'सर्वधर्म समभाव' की भावना से किया जाना चाहिए।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण

मूल्य आधारित शिक्षा के नाम पर पाठ्यक्रम के सभी हिस्सों में धार्मिक शिक्षा को जोड़ने के सुझाव को इस बात के साथ रखकर देखा जाना चाहिए कि एन.सी.एफ. में विज्ञान, गणित और इतिहास पढ़ाने का भी प्रस्ताव है। विज्ञान और गणित के अपने कुछ मूल्य हैं जिन्हें विकसित करना हम सबके लिए अनिवार्य है। एन.सी.ई.आर.टी. की पुरानी विज्ञान पाठ्यपुस्तक में इनमें से कुछ मूल्यों का उल्लेख प्रथम पृष्ठ पर किया गया था:

- अपने आसपास की चीजों और घटनाओं के बारे में जिज्ञासु रहो

- विश्वासों (मान्यताओं) और व्यवहारों पर सवाल उठाने की हिम्मत रखो

- क्या, कैसे और क्यों पूछो और ध्यानपूर्वक अवलोकन, प्रयोग, परामर्श, चर्चा के बाद अपने जवाब तक पहुंचो।

- चर्चा, सूझबूझ और तर्क से काम लो। किसी पूर्वाग्रह में मत फंसो।

हमारी राय में स्कूलों में मूल्य आधारित शिक्षा में इन मूल्यों पर प्रमुख ज़ोर होना चाहिए। एन.सी.एफ. ने

मूल्य आधारित शिक्षा के नाम पर पाठ्यक्रम के सभी हिस्सों में धार्मिक शिक्षा को जोड़ने के सुझाव को इस बात के साथ रखकर देखा जाना चाहिए कि एन.सी.एफ. में विज्ञान, गणित और इतिहास पढ़ाने का भी प्रस्ताव है। विज्ञान और गणित के अपने कुछ मूल्य हैं जिन्हें विकसित करना हम सबके लिए अनिवार्य है।

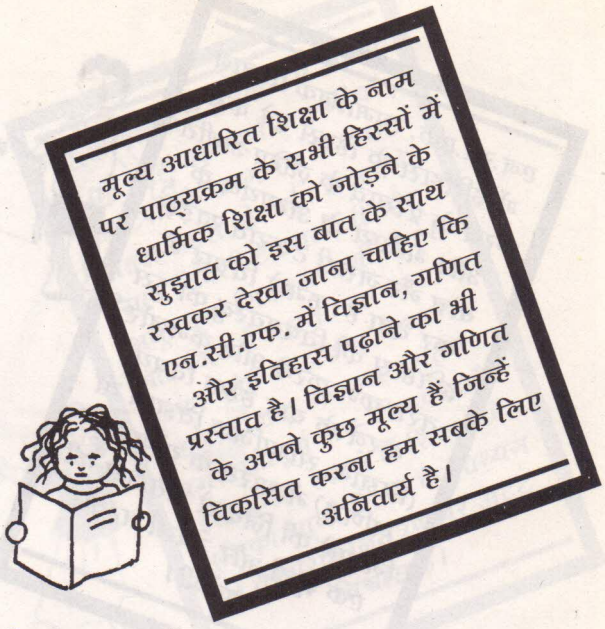

विज्ञान पाठ्यक्रम में मुख्य ज़ोर 'विज्ञान' से हटाकर 'विज्ञान और टेक्नॉलॉजी' पर कर दिया है। एन.सी.एफ. में ये और ऐसे अन्य बदलाव इस धारणा पर आधारित हैं कि अधिकांश छात्र दसवीं के बाद स्कूल छोड़ देंगे। इसलिए एन.सी.एफ. 'ग्रामीण और आदिवासियों की ओर उन्मुख टेक्नॉलॉजी' को शामिल करने की ज़रूरत की बात करता है। उसमें यह भी कहा गया है कि, "विज्ञान को विषयों की पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर जेण्डर, संस्कृति, भाषा, गरीबी, असमर्थता, भावी कारोबार, पर्यावरण और छोटे परिवार के आदर्श को अपनाने जैसे मुद्दों का स्वागत करना चाहिए।" गणित के मामले में एन.सी.एफ. उस गणित की पढ़ाई पर ज़ोर देता है जिसका इस्तेमाल रोज़मर्रा के कामकाज में होगा। मसलन आंकड़ों की तालिका, चार्ट और चित्र और बढ़ती जनसंख्या जैसी तात्कालिक समस्याओं की व्याख्या। अपने पर्यावरण और परिवेश (शहरी, ग्रामीण या आदिवासी) में अवलोकन और प्रयोग के ज़रिए विज्ञान सीखने-सिखाने के पक्ष में काफी कुछ कहा जा सकता है। लेकिन हमारे विचार में विज्ञान और गणित को लेकर एन.सी.एफ. का प्रस्ताव विज्ञान की विषयवस्तु, खासकर मूल्यों, को कमज़ोर करेगा और उसे टेक्नॉलॉजी बाबत जानकारी से बोझिल कर देगा। वैज्ञानिक दृष्टि और

एन.सी.एफ. सामाजिक विज्ञान में इतिहास के हिस्से को कम करने के प्रस्ताव के ज़रिए अतीत और भविष्य के अध्ययन के बीच गैर ज़रूरी टकराव खड़ा कर देता है। हमारे विचार में इतिहास की विषयवस्तु को इस तरह कम करने और कमज़ोर करने के बाद हरेक विषय (विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित) में भारत के योगदान गिनाने की ज़िद से इतिहास की एक झूठी और उथली तस्वीर बनेगी।

विज्ञान की मूल अवधारणाएं ही बुनियाद हैं। टेक्नॉलॉजी एक पनपती प्रक्रिया है जिसकी बुनियाद में विज्ञान है और अगर बच्चों को स्कूल में विज्ञान की बढ़िया नींव मिली है तो बड़े होने पर उसे आसानी से सीखा जा सकता है।

इसी तरह से हमारे सामाजिक मूल्य वैज्ञानिक दृष्टि को समाज पर लागू करने के ढंग पर निर्भर करते हैं। एन.सी.एफ. का सोच यह है कि, "सामाजिक अध्ययन शिक्षा को अर्थपूर्ण, प्रासंगिक और कारगर बनाने के लिए वर्तमान के सरोकारों और मुद्दों को आगे रखना ज़रूरी है।" यह प्रस्ताव तो मान्य है लेकिन एन.सी.एफ. सामाजिक विज्ञान में इतिहास के हिस्से को कम करने के प्रस्ताव के ज़रिए अतीत और भविष्य के अध्ययन के बीच गैर ज़रूरी टकराव खड़ा कर देता है। इसकी बजाय वह वैश्वीकरण और पंचायती राज पर ज़्यादा ज़ोर देना चाहता है। इतिहास सामाजिक विज्ञान का एक अहम हिस्सा है। जब तक हम एक सही ऐतिहासिक नज़र से लैस नहीं हैं, हम अपने समाज, अर्थव्यवस्था और (वैश्वीकरण और पंचायती राज समेत) राजनीति की मौजूदा घटनाओं को एक निरर्थक पुलिंदे की तरह देखेंगे जिसका कोई भी मनमाना अर्थ निकाला जा सकता है।

इतिहास को लेकर एन.सी.एफ. के प्रस्ताव से लगता है कि ऐतिहासिक घटनाओं को उनके काल-क्रम में नहीं पढ़ाया जाएगा और न ऐतिहासिक विश्लेषण के तरीके पढ़ाए जाएंगे। उच्च प्राथमिक स्तर के बारे में एन.सी.एफ. का कहना है कि, "भारत के इतिहास की शुरुआत चुनिन्दा सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक घटनाओं/प्रसंगों और विकास से की जानी चाहिए। इसमें युरोपियों द्वारा भारत या अमरीका की खोज जैसे विषय भारतीय छात्रों के लिए अप्रासंगिक हो जाएंगे।" सवाल उठता है कि क्या पश्चिम युरोप में पूंजीवाद का विकास और तत्पश्चात युरोपीय उपनिवेशवाद के विस्तार का भारत पर प्रभाव ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं रखता? इसके साथ ही एन.सी.एफ. भारत की सांस्कृतिक विरासत और अन्य स्थानों में भारतीय संस्कृति के विस्तार पर ज़ोर देता है।

हमारे विचार में इतिहास की विषयवस्तु को इस तरह कम करने और कमज़ोर करने के बाद हरेक विषय (विज्ञान, सामाजिक विज्ञान या गणित) में भारत के योगदान गिनाने की ज़िद से इतिहास की एक झूठी और उथली तस्वीर बनेगी।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि युरोपीय वैज्ञानिक, आर्थिक और राजनैतिक विचारों को अंगीकृत किया गया था और आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना के विकास में तथा आज़ादी के संघर्ष और उसके प्रेरक मूल्यों में इसकी अहम भूमिका रही। इतिहास के एक विस्तृत, संतुलित और विश्लेषणात्मक अध्ययन के बगैर आधुनिक मूल्यों की शिक्षा असम्भव है।

इतिहास

एन.सी.एफ. की भारतीय इतिहास को लेकर अपनी धारणा है जिसे वह साफ तौर पर व्यक्त भी करता है। वह औपनिवेशिक काल से पहले के भारतीय समाज को सामाजिक विरोधाभासों से मुक्त पुरातन और अपरिवर्तनशील इकाई मानता है। उसका मानना है कि उपनिवेश काल से पहले की शिक्षा उस समय के

सामाजिक आर्थिक ढांचे का औचित्य सिद्ध करने में सहायक थी। उसका विश्वास है कि उपनिवेश पूर्व की शिक्षा प्रणाली ने एक "आत्म चेतना पर केंद्रित धार्मिक-दार्शनिक लोकाचार" को प्रोत्साहित किया जो व्यक्ति को समर्पित होने में मददगार होता था।

उसका विश्वास है कि उस समय की सामंजस्यपूर्ण ऊंच-नीच ब्रिटिशों के आगमन के साथ तहस-नहस हो गई। वे अपने साथ विदेशी टेक्नालॉजी और अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली लेकर आए जिसमें भारतीय समरसता का कोई आइडिया न था। एन.सी.एफ. का इस पुरातन समरसतापूर्ण ऊंच-नीच पर और इसे बनाए रखने में शिक्षा की भूमिका यानी शिक्षा के माध्यम से वैचारिक नियंत्रण पर अटूट विश्वास है।

उसका विश्वास है कि उस समय की सामंजस्यपूर्ण ऊंच-नीच ब्रिटिशों के आगमन के साथ तहस-नहस हो गई। वे अपने साथ विदेशी टेक्नालॉजी और अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली लेकर आए जिसमें भारतीय समरसता का कोई आइडिया न था। एन.सी.एफ. का इस पुरातन समरसतापूर्ण ऊंच-नीच पर और इसे बनाए रखने में शिक्षा की भूमिका यानी शिक्षा के माध्यम से वैचारिक नियंत्रण पर अटूट विश्वास है।

भारत में शिक्षा के इतिहास को भी विकृत किया गया है। इस तथ्य को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया गया है कि उपनिवेश पूर्व व्यवस्थाएं स्थानीय थीं और जाति, वर्ग और जेण्डर के विभाजनों में बंधी होती थी। उनका काम स्थानीय कृषि, व्यापार और वाणिज्य को सुगम बनाना था। इस अर्थ में उपनिवेश पूर्व के तंत्र न तो आधुनिक थे और न ही राष्ट्रीय।

एन.सी.एफ. ने औपनिवेशिक प्रशासन में प्राच्य समर्थकों और अंग्रेज़ी समर्थकों के बीच चली लम्बी बहसों को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया है। एक तरफ प्राच्य प्रेमी थे जो भारत में शिक्षा की मौजूदा व्यवस्था को बनाए रखना चाहते थे, दूसरी तरफ अंग्रेज़ी समर्थक अंग्रेज़ी और पश्चिमी शिक्षा को लागू करना चाहते थे। एन.सी.एफ. ने राजा राममोहन रॉय और विद्यासागर जैसे भारतीय शिक्षा सुधारकों द्वारा इस बहस में किए अहम हस्तक्षेपों को भी पूरी तरह से अनदेखा कर दिया है।

विद्यासागर (1820-93) धर्मनिरपेक्ष मानवतावाद के प्रतीक थे। शिक्षा के मामले में उन्होंने इंसानी ज़रूरतों को केंद्र में रखा और शिक्षा को धार्मिक शिकंजे से मुक्त करने के प्रयास किए। संस्कृत कॉलेज के प्राध्यापक के पद पर होते हुए विद्यासागर ने शिक्षा परिषद के सचिव डॉ. मुएट को लिखा था कि वेदान्त और सांख्य दर्शन और बर्कले का दर्शन, सभी दर्शन की मिथ्या विधाएं हैं। गौरतलब है कि विद्यासागर इन सभी के विशेषज्ञ थे। उनका कहना था कि अंग्रेज़ी और जॉन स्टूअर्ट मिल का 'तर्क' पढ़ाया जाना चाहिए। ताकि "इन मिथ्या दर्शनों के हानिकारक प्रभावों को विफल किया जा सके" और विद्यार्थियों की पहुंच पश्चिम के बेहतरीन विचारों तक सम्भव हो सके।

तो विद्यासागर जैसे शिक्षा सुधारक भी आधुनिक भारत के निर्माण के लिए अच्छे पश्चिमी विचारों के पक्षधर थे। हमारे इतिहास के इसी रोशनख्याली के आन्दोलन ने आगे चलकर उपनिवेशवाद की आर्थिक और राजनैतिक आलोचना की नींव डाली। लगता है एन.सी.एफ. इतिहास के इस पाठ को भूल गया है।

शिक्षा नीति में असमता का पुनर्जागरण

प्राच्य समर्थकों और अंग्रेज़ी समर्थकों के बीच लम्बी बहसों से शिक्षा की जो नीति उभरी, वह अंततः एक औपनिवेशिक नीति थी। इसमें,

- कुछ लोगों के लिए सेकण्डरी और उच्च शिक्षा अंग्रेज़ी में थी और पाश्चात्य पाठ्यक्रम था। यहीं से औपनिवेशिक

> एन.सी.एफ. प्रतिभावान बच्चों की पहचान और विशेष प्रशिक्षण की बात भी करता है। पहचान के आधार बुद्धि गुणांक, भावनात्मक गुणांक और आध्यात्मिक गुणांक होंगे। गौरतलब है कि पहला आधार विवादास्पद है जबकि दूसरे दो व्यक्तिपरक हैं, जिन्हें विज्ञान ने आज तक स्वीकारा नहीं है।

प्रशासनिक सेवाओं के लिए लोग चुने जाते थे। -शेष के लिए सीमित आधुनिकीकरण, पाठ्यक्रम में सीमित बदलाव और परीक्षा पद्धति लागू करने के लिए देशज स्कूलों को अनुदान दिए जाते थे।

विडम्बना है कि स्वयं एन.सी.एफ. का प्रस्ताव एक दोहरी और असमानता भरी औपनिवेशिक पद्धति से ही मेल खाता है। भारत की आज़ादी के संघर्ष में शिक्षा में मानवीय मूल्यों की बात उठी थी। उदाहरण के लिए लाला लाजपत राय कहते हैं, "वह पुराना विचार अब समाप्त हो चुका है कि राज्य का मुख्य सरोकार बुनियादी शिक्षा उपलब्ध कराने तक सीमित है। दुनिया भर में स्वीकारा गया है कि राज्य का दायित्व बुनियादी शिक्षा के साथ खत्म नहीं हो जाता - और न ही राज्य उच्च शिक्षा की ज़रूरत की अनदेखी कर सकता है।"

मानववादी नज़रिया यह है कि मानवता को हमेशा कई सारी प्राकृतिक और सामाजिक समस्याओं से दो-चार होना पड़ता है। तरक्की का मतलब है कि शिक्षा के प्रसार की राह में आने वाले अवरोधों को हटाया जाए ताकि समाज इन समस्याओं के समाधान में ज्ञान का इस्तेमाल कर सके।

लेकिन दसवीं के बाद व्यावसायिक और अकादमिक, दो अलग-अलग धाराएं शुरू करने के एन.सी.एफ. के प्रस्ताव में एक दोहरी और असमान प्रणाली को बढ़ावा देने और इस तरह शिक्षा के फैलाव को संकुचित करने का इरादा साफ देखा जा सकता है। इसमें एक अभूतपूर्व मान्यता को स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अधिकांश छात्रों के लिए सेकण्डरी स्तर औपचारिक शिक्षा का अंत और काम की दुनिया का शुरुआती बिन्दु हो सकता है।

एक और स्पष्ट मान्यता यह है कि भावी नेतृत्व तो अकादमिक धारा और शिक्षा के उच्च स्तर को अपनाने वालों में से ही उभरेगा। एन.सी.एफ. प्रतिभावान बच्चों की पहचान और विशेष प्रशिक्षण की बात भी करता है। पहचान के आधार बुद्धि गुणांक, भावनात्मक गुणांक और आध्यात्मिक गुणांक होंगे। गौरतलब है कि पहला आधार विवादास्पद है जबकि दूसरे दो व्यक्तिपरक हैं, जिन्हें विज्ञान ने आज तक स्वीकारा नहीं है।

एन.सी.एफ. बड़ी संख्या में और शायद अधिकांश छात्रों को व्यावसायिक धारा में मोड़ना चाहता है। एन.सी.एफ. की इस योजना से शिक्षा में समान अवसर उपलब्ध कराने की बजाए वर्ग भेद को बढ़ावा मिलेगा। इससे जाति, वर्ग और जेण्डर के आधार पर श्रम का विभाजन और दृढ़ हो जाएगा। गौरतलब है कि शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराना लोकतांत्रिक और मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की एक विशेषता है। व्यावसायिक धारा किसके लिए है इस बारे में एन.सी.एफ. की सोच बहुत स्पष्ट है। यह धारा मुख्यतः सामाजिक रूप से कमज़ोर समूहों जैसे महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति और शारीरिक रूप से विकलांग लोगों के लिए है। यह शायद पहला मौका होगा जब, नीतिगत स्तर पर, शारीरिक रूप से असमर्थ लोगों को सामान्य अकादमिक शिक्षा के अवसर से वंचित किया जाएगा। एन.सी.एफ. बहुत ध्यानपूर्वक अवसरों में समानता की नई परिभाषा प्रस्तुत करता है, "सुनिश्चित करना कि प्रत्येक व्यक्ति को उपयुक्त शिक्षा *उसके अस्तित्व के अनुरूप* रफ्तार और तरीकों से मिले।"

झूठी दलीलें

व्यावसायिक धारा की नींव इस आधार पर रखी गई है कि संगठित क्षेत्र में रोज़गार के अवसर कम से कमतर

हो रहे हैं। एन.सी.एफ. को लगता है कि सेवा क्षेत्र में अवसर बढ़ रहे हैं। व्यावसायिक धारा का उद्देश्य है स्वरोज़गार और उद्यमों के लिए आवश्यक कौशल उपलब्ध कराना। जिन क्षेत्रों में ज़ोर दिया जा रहा है वे हैं सूचना टेक्नॉलॉजी, कृषि आधारित टेक्नॉलॉजी और परम्परागत दस्तकारी। यही वे क्षेत्र हैं जहां आर्थिक मंदी की सबसे ज़बर्दस्त मार पड़ी है।

परम्परागत बुनकरों को तो आत्महत्या का सहारा लेना पड़ा है। सरकारी आंकड़े स्वरोज़गार में सतत गिरावट दर्शा रहे हैं। कारण हैं मंदी और संगठित उद्योगों से प्रतिस्पर्धा। सच्चाई यह है कि रोज़गार बाज़ार की स्थिति और अर्थव्यवस्था पर निर्भर करता है, व्यावसायिक योग्यता पर नहीं। सबसे बेहतर व्यावसायिक योग्यता प्राप्त व्यक्ति को भी तभी रोज़गार मिलता है जब अर्थव्यवस्था उस तरह का रोज़गार पैदा करती है। और हमारी अर्थव्यवस्था में नियोजन का पक्ष अब है नहीं और न ही रोज़गार को प्रोत्साहित करने वाली नीतियां। और फिर अच्छी व्यावसायिक शिक्षा की एक अहम ज़रूरत है उपकरणों और प्रशिक्षकों पर बड़े पैमाने पर निवेश। एन.सी.एफ. जानता है कि सरकार द्वारा संसाधन उपलब्ध करा पाने की सम्भावना बहुत कम है । देश भर में औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (आई.टी.आई.) का अनुभव फण्ड्स और उपकरणों के अभाव का उदाहरण है। इसलिए एन.सी.एफ. स्कूलों और संगठित/असगंठित उद्योग के बीच 'अर्द्ध-व्यावसायिक' परियोजनाओं में साझेदारी के विचार को बढ़ावा देता है। स्कूलों और फैक्ट्रियों में नियमन और निरीक्षण की बदतर स्थिति को देखते हुए इस बात की पूरी सम्भावना दिखती है कि व्यावसायिक शिक्षा के नाम पर यह बाल श्रम को वैधता प्रदान करने का एक तरीका बन जाएगा।

यह पूरक व्यावसायिक प्रशिक्षण से बहुत अलग होगा। क्योंकि उस तरीके में तो बच्चों को ज्ञान और व्यावसायिक कौशल दोनों में पारंगत किया जाता है। लेकिन एन.सी.एफ. में प्रस्तावित व्यावसायिक शिक्षा की अलग धारा उन लाखों बच्चों के लिए अंधी गलीं साबित होगी जो शायद आगे पढ़ना चाहते हों। यह प्रस्ताव शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या में कमी लाने का एक साधन मात्र है क्योंकि ऐसे बेरोज़गार अपने अधिकारों के प्रति सचेत होते हैं और एक चौकस राजनैतिक ताकत बन सकते हैं। दरअसल व्यावसायिक कोर्स की सीमाओं से लोग वाकिफ हैं। लेकिन एक बार फिर व्यावसायिक शिक्षा को सही ठहराने के लिए एन.सी.एफ. मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच के 'मानसिक अवरोधों' और 'श्रम का सम्मान' वगैरह का हवाला देता है। वास्तव में ये अवरोध केवल मानसिक नहीं हैं। हमारे जैसे समाजों में सम्पत्ति का बंटवारा श्रम विभाजन पर निर्भर करता है। दिमागी काम को शारीरिक श्रम से ज़्यादा कीमती माना जाता है। मूल्यांकन एक मानसिक प्रक्रिया मात्र नहीं है बल्कि एक वस्तुनिष्ठ क्रिया है जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का एक अभिन्न हिस्सा है। व्यवस्था में बदलाव लाए बगैर 'श्रम के सम्मान' की अपेक्षा व्यर्थ होगी। हो सकता है मैं अपने घरेलू नौकर के साथ बेहद नरमाई से पेश आऊं लेकिन माह के अन्त में प्रचलित बाज़ार भाव से उसे तनखा दूंगा। और व्यवस्था में बदलाव आने के बावजूद (जैसे समाजवादी समाजों में हुआ) दिमागी कामों और शारीरिक श्रम के बीच पारिश्रमिक का अंतर धीरे-धीरे, सभी तरह के श्रम की ज़रूरत को लेकर लोगों को शिक्षित करने की लम्बी प्रक्रिया के ज़रिए, ही कम होगा।

एन.सी.एफ. 'श्रम के सम्मान' की दलील का इस्तेमाल व्यावसायिक शिक्षा की योजना को आगे बढ़ाने मात्र के लिए कर रहा है।

रोज़गार उन्मुखीकरण और शिक्षा के मूल्य

एन.सी.एफ. में अकादमिक, व्यावसायिक सारी शिक्षा का पूरा ज़ोर, रोज़गार पाने की ओर है यानी शिक्षा को बाज़ार की तरफ उन्मुख करना। 'वैश्वीकरण' और 'प्रतिस्पर्धा' के नाम पर एन.सी.एफ. 'लचीलेपन' की ज़रूरत पर ज़ोर डालता है। विषयों के समूहीकरण में लचीलापन और सेमिस्टर फॉर्मेट में विषयों के मॉडयूल (बाज़ार की मांग के हिसाब से छात्र इसमें हेर-फेर कर सकते हैं) बाबत उसकी सिफारिशों में ऐसा ही नज़र आता है।

शिक्षा को इस तरह रोज़गार-उन्मुखी बनाने के बारे में दो चिन्ताएं हैं - एक का सम्बंध शैक्षिक प्रक्रिया से है और दूसरी का शिक्षा के मूल्यों से। स्कूल के बच्चों की विषय की समझ को मजबूत कराते हुए उन्हें बहुमुखी ज्ञान का आधार उपलब्ध कराने की बजाय रोज़गार-उन्मुखीकरण में कम उम्र में ही संकीर्ण व तकनीकी हुनर हासिल कराने की कोशिश होगी। हो सकता है यह बच्चों में व्यवस्थित और समन्वित सोच-प्रक्रिया के विकास को कुंद ही कर दे। व्यावसायीकरण पर ज़ोर मूल्य आधारित शिक्षा के किसी प्रयास की राह में व्यवधान ही डालेगा। क्योंकि शिक्षा को नौकरी की ओर संकुचित दृष्टिकोण से उन्मुख करने से शिक्षा का और ज़्यादा व्यावसायीकरण होगा और शिक्षा और ज़्यादा एक वस्तु में तब्दील होती जाएगी।

इससे छात्र और उनके पालक उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय इसे एक निवेश के रूप में देखेंगे ताकि आर्थिक लाभ जल्द से जल्द प्राप्त किए जा सकें। यह शिक्षा को सामाजिक बदलाव के औज़ार के रूप में देखने की किसी भी सम्भावना को खत्म कर देगा।

धार्मिक शिक्षा

एन.सी.एफ. का मानना है कि धर्म मूल्यों का एक अहम स्रोत है। इसलिए धर्म के बारे में शिक्षा को हरेक विषय और पाठ्यक्रम से इतर गतिविधियों में भी जोड़ा जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के माननीय जज भी ऐसा ही विचार रखते हैं। इस मामले में वे कानूनी दृष्टांतों और वेदों, उपनिषदों व जे. कृष्णमूर्ति का हवाला देते हैं। अफसोस है कि उन्होंने इतने ही विस्तार से प्रकृति और इतिहास की वैज्ञानिक दृष्टि के मूल्यों को नहीं देखा।

मूल्यों के महत्व को लेकर हमें कोई संदेह नहीं है लेकिन यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि ये कोई शाश्वत या स्थाई मूल्य नहीं हैं। परम और शाश्वत माने गए मूल्यों की गहराई से जांच करने पर पता चलता है कि वे भी इतिहास से ही जन्मे हैं। किसी मूल्य या विचार विशेष का किसी नियत समय या जगह पर उभरना ऐतिहासिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसी प्रकार से आधुनिक विज्ञान बताता है कि सत्य कभी भी अमूर्त या सामान्य नहीं होता, वह हमेशा सापेक्ष और ठोस होता है। ऐतिहासिक परिस्थितियों के बदलने के साथ-साथ नए मूल्यों का उभरना अपरिहार्य है क्योंकि पुराने मूल्य बासी, जड़ और प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं।

धर्मों ने अक्सर अतीत काल में आचरण के मानक बनाए थे। लेकिन धर्मों का भी इतिहास और समाजशास्त्र

होता है। दर्शन के अलावा वे कुछ रीति-रिवाज़, कर्मकाण्ड और आचरण अपनाते हैं जो धार्मिक समुदायों के प्रमुख पहचान चिन्ह होते हैं। कुछ रिवाज़, कर्मकाण्ड और आचरण दमनकारी और शोषणमूलक होते हैं। लेकिन उनके हिमायती दावा करेंगे कि इन्हें धार्मिक स्वीकृति मिली है। उदाहरण के लिए किसी एक शंकराचार्य का मत है कि महिलाओं को वेद उच्चारण की मनाही है। विभिन्न धर्मों में महिलाओं की स्थिति और उनके अधिकारों को लेकर गम्भीर सैद्धांतिक बहसें हुई हैं। प्रत्येक भागीदार का दावा होता है कि उसकी ही व्याख्या सबसे सही है।

हम इतिहास की वैज्ञानिक पड़ताल और इतिहास के बारे में धार्मिक भावनाओं के टकरावों को देख ही रहे हैं। तब धर्मों के ऐसे 'शुद्ध' सूत्रों को पहचानना कैसे सम्भव होगा, जो लोकतांत्रिक और वैज्ञानिक मूल्यों के भी अनुरूप हों?

आस्था और विश्वास पर आधारित धार्मिक दृष्टि और खोजबीन व तर्क पर आधारित वैज्ञानिक दृष्टि के बीच के विरोधाभास को आसानी से नज़रअंदाज़ नहीं जा सकता। यह सर्वमान्य है कि चार्ल्स डार्विन बरसों तक इस बात से बेचैन रहे थे कि 'ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़' पर किए अपने काम को छापें या नहीं क्योंकि यह उनके खुद के धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध जाता था। जब हमारे बच्चे जीवन की उत्पत्ति और प्रजातियों के विकास के बारे में पढ़ेंगे तब क्या हम डार्विन के सिद्धातों के साथ-साथ उनके सामने उस विषय पर विभिन्न धर्मों के विचार भी प्रस्तुत कर सकेंगे। अगर धार्मिक शिक्षा को सभी विषयों से जोड़ा गया तो यह अपरिहार्य हो जाएगा।

इसलिए 'धर्मों के बारे में शिक्षा' और 'धार्मिक शिक्षा' के बीच जिस भेद की बात एन.सी.एफ. और सर्वोच्च न्यायालय कर रहे हैं, वह अंतर दरअसल अस्तित्वहीन और कृत्रिम है। यही कारण है कि स्कूलों में धर्मों की पढ़ाई लगातार विवादास्पद बनी रहेगी और साथ में छात्रों के लिए उलझन तो होगी ही। हमें ध्यान रखना होगा कि धर्म का आज समाज में एक बहुत संकीर्ण और विघटनकारी पक्ष है और शिक्षक भी पूर्वाग्रहों से बचे नहीं

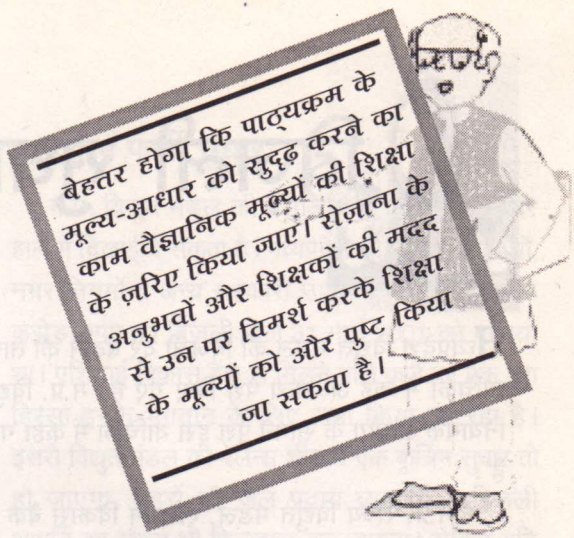

हैं। उत्तरप्रदेश में सरस्वती वंदना शुरू करने के मामले में यह स्पष्ट रूप से देखा गया था। शिक्षक अनिच्छुक बच्चों को भी वंदना गाने पर मजबूर करते थे। जब धर्म जैसे संवेदनशील विषय को पढ़ाया जा रहा हो तो शिक्षक की व्यक्तिगत प्राथमिकताओं और पूर्वाग्रहों को कक्षा से बाहर रखना संभव नहीं होगा।

इसलिए, शिक्षा में धर्मनिरपेक्षता की सही प्रस्तुति 'सर्व धर्म समभाव' नहीं है बल्कि धर्म को पूरी तरह से शिक्षा से दूर रखना है। यही रास्ता हमें विद्यासागर जैसे रोशनख्याल नेताओं ने दिखाया था। यह धर्म विरोधी दृष्टिकोण नहीं है।

अगर लोगों को लगता है कि ये उपदेश उन्हें रोज़मर्रा की शारीरिक और नैतिक समस्याओं से निपटने में सहायक हैं तो वे अब भी धार्मिक शिक्षाओं पर चलने को स्वतंत्र हैं। धार्मिक संस्थाएं धर्म की अपनी व्याख्याओं का प्रचार-प्रसार करती रहेंगी और लोग इसे स्वीकार या अस्वीकार करने को स्वतंत्र होंगे। स्कूल जाने वाले बच्चों के लिए धर्म को मां-बाप और बच्चों के बीच का निजी मसला बना रहने दें।

बेहतर होगा कि पाठ्यक्रम के मूल्य-आधार को सुदृढ़ करने का काम वैज्ञानिक मूल्यों की शिक्षा के ज़रिए किया जाए। रोज़ाना के अनुभवों और शिक्षकों की मदद से उन पर विमर्श करके शिक्षा के मूल्यों को और पुष्ट किया जा सकता है। अमूर्त, और धर्म को शामिल करके, मूल्यों की शिक्षा अप्रभावी और विघटनकारी होगी। ***(स्रोत फीचर्स)***